यह नियमसार। जीव अधिकार पूरा हुआ। दूसरा अजीव अधिकार। अजीव अधिकार की शुरुआत होती है। भगवान ने ज्ञान में जीव-अजीव दो द्रव्य देखे हैं और अजीव के पाँच प्रकार हैं। जानना चाहिए न? भगवान केवली तीर्थंकरदेव ने ज्ञान में छह द्रव्य देखे, उसमें आत्मा तो अखण्ड अभेद, शुद्ध है, उसकी बात कर गये हैं। अब अजीव का स्वरूप वर्णन करते हैं। अजीव में भी पहले पुद्गल का स्वरूप वर्णन करते हैं।

अणुखंधवियप्पेण दु पोग्गलदव्वं हवेइ दुवियप्पं।
खंधा हु छप्पयारा परमाणू चेव दुवियप्पो।।२०।।

नीचे हरिगीत

परमाणु एवं स्कन्ध हैं, दो भेद पुद्गलद्रव्य के।
है स्कन्ध छै विधि और विविध विकल्प हैं परमाणु के॥२०॥

जीव का अधिकार। पाँच वर्ष पहले पढ़ा नहीं था, यह छोड़ दिया था। रामजीभाई कहे कि सब क्रमसर है, वह लेना।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पहले आया था। पाँच-सात वर्ष पहले।

टीका :— यह पुद्गलद्रव्य के भेदों का कथन है। अजीव के पाँच प्रकार के, उनमें भी पुद्गल है, उसकी यह व्याख्या है। **प्रथम तो पुद्गलद्रव्य के दो भेद हैं...** पुद्गल

है न ? जिसे कहते हैं पुद्गल, उसके दो भेद हैं। **स्वभावपुद्गल और विभावपुद्गल।** यह सब जानकर, वे मेरे आत्मा से भिन्न चीज़ है, इसलिए वह बताया जाता है। **परमाणु, वह स्वभावपुद्गल है...** एक पाइंट है, रजकण, उसे पर का सम्बन्ध कुछ नहीं, उसमें विभाव नहीं, इसलिए उसे स्वभावपुद्गल कहा जाता है। एक परमाणु को स्वभावपुद्गल कहा जाता है, तथापि वह आत्मा के स्वरूप में है नहीं। उसका स्वभाव-पुद्गल का, परमाणु वास्तविक वही पुद्गल है।

और स्कन्ध, वह विभावपुद्गल है। यह दो रजकण से लेकर अनन्त परमाणु जो इकट्ठे दिखते हैं, उन सबको विभावपुद्गल कहने में आता है। शरीर, वाणी, कर्म, मन, पैसा, दाल, भात, सब्जी, रोटी इत्यादि। यह स्कन्ध है। बहुत रजकणों का बना हुआ पिण्ड है। वह विभावपुद्गल है। एक-दूसरे के निमित्त-निमित्त में सम्बन्ध में आये न, इसलिए विकारी पर्यायवाले वे विभावपुद्गल हैं। उन्हें विकार होने पर भी कहीं उन्हें दुःख नहीं है। मात्र उनका स्वरूप ऐसा है, ऐसा वर्णन करते हैं।

स्वभाव-पुद्गल, कार्यपरमाणु और कारणपरमाणु — ऐसे दो प्रकार का है। एक परमाणु जो अन्तिम पाइंट, वस्तु, अस्ति, जगत का तत्त्व, उसके दो भेद हैं। पहले पुद्गल के दो भेद कहे - स्वभावपुद्गल और विभावपुद्गल। स्वभावपुद्गल परमाणु, विभावपुद्गल स्कन्ध। स्वभावपुद्गल के दो भेद, एक परमाणु के (दो भेद)। कार्यपरमाणु और कारणपरमाणु दो प्रकार से है। इसका स्पष्टीकरण बाद में करेंगे।

स्कन्धों के छह प्रकार हैं— अनन्त रजकण का जो पिण्ड होता है, उसे स्कन्ध कहा जाता है। उसके छह प्रकार हैं। **१. पृथ्वी, २. जल, ३. छाया, ४. (चक्षु के अतिरिक्त) चार इन्द्रियों के विषयभूत स्कन्ध, ५. कर्मयोग्य स्कन्ध, और ६. कर्म को अयोग्य स्कन्ध—ऐसे छह भेद हैं। स्कन्धों के भेद, अब कहे जानेवाले सूत्रों में (अगली चार गाथाओं में) विस्तार से कहे जायेंगे।** बाद की चार गाथाओं में कहेंगे।

श्लोक-३७

(अब, २०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं —)

(अनुष्टुप्)

गलनादणुरित्युक्तः पूरणात्स्कन्धनामभाक् ।
विनानेन पदार्थेण लोकयात्रा न वर्तते ।।३७।।

(वीरछन्द)

गलने से परमाणु होता, मिलने से स्कन्ध बने।
इस पदार्थ के बिना जगत में, लोकयात्रा नहीं बने॥३७॥

***श्लोकार्थ :*—(पुद्गलपदार्थ) गलन द्वारा (अर्थात्, भिन्न हो जाने से) 'परमाणु' कहलाता है और पूरण द्वारा (अर्थात्, संयुक्त होने से) 'स्कन्ध' नाम को प्राप्त होता। इस पदार्थ के बिना लोकयात्रा नहीं हो सकती॥३७॥**

श्लोक-३७ पर प्रवचन

(अब, २०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं —) ३७ वाँ श्लोक है।

गलनादणुरित्युक्तः पूरणात्स्कन्धनामभाक् ।
विनानेन पदार्थेण लोकयात्रा न वर्तते ।।३७।।

परमाणु जो है, वह गलन द्वारा स्कन्ध में से पृथक् पड़ता है, ऐसा कहते हैं। उसे यहाँ परमाणु कहा जाता है। यह रजकण-जत्था है, उसमें से अन्तिम पृथक् परमाणु पड़े, उसे यहाँ परमाणु कहा जाता है। **पूरण द्वारा (अर्थात्, संयुक्त होने से) 'स्कन्ध' नाम को प्राप्त होता।** पूरण गलन की व्याख्या की है।

(पुद्गलपदार्थ) गलन द्वारा (अर्थात्, भिन्न हो जाने से) 'परमाणु' कहलाता

है और पूरण द्वारा (अर्थात्, संयुक्त होने से) 'स्कन्ध' नाम को प्राप्त होता। ऐसा कहना है। वैसे तो परमाणु स्वयं पुद्गल स्वभाविक है, परन्तु स्थूल रीति से परमाणु का स्वभाव स्कन्ध से पृथक् पड़ना है, ऐसे गले, पृथक् पड़े, उसे परमाणु कहते हैं; और बहुत रजकणों का पिण्ड-जत्था हो, उसे पूरण कहते हैं।

नजदीक आओ। सामनेवालों को छूट इतनी होती है न कि पीछे खचाखच हो जाती है। छूट होती है न। पहले आवे, वह पहले बैठे न।

इस पदार्थ के बिना लोकयात्रा नहीं हो सकती। यह गमन-फमन सब है, वह जड़ की क्रिया है। वह आत्मा की क्रिया नहीं है। हिलना, चलना, उठना, बैठना, रजकण, यह दाल-भात का बनना, मकानों का बनना, यह सब स्थिति तो पुद्गल परमाणु की है; आत्मा की नहीं। समझ में आया? **इस पदार्थ के बिना लोकयात्रा...** लोकयात्रा अर्थात् लोक में गमन। ऐसे से ऐसे जाना, यह पुद्गल की क्रिया है। आत्मा से भिन्न है। आत्मा की क्रिया नहीं है। यह २०वीं गाथा का कलश हुआ। चार गाथा (२१ से २४ गाथा)।

गाथा-२१-२४

अइथूलथूल-थूलं थूलस्सुहुमं च सुहुमथूलं च।
सुहुमं अइसुहुमं इदि धरादियं होदि छब्भेयं।।२१।।
भूपव्वदमादीया भणिदा अइथूलथूलमिदि खंधा।
थूला इदि विण्णेया सप्पीजलतेल्लमादीया।।२२।।
छायातवमादीया थूलेदरखंधमिदि वियाणाहि।
सुहुमथूलेदि भणिया खंधा चउरक्खविसया य।।२३।।
सुहुमा हवंति खंधा पाओग्गा कम्मवग्गणस्स पुणो।
तव्विवरीया खंधा अइ-सुहुमा इदि परूवेंति।।२४।।

अतिस्थूलस्थूलाः स्थूलाः स्थूलसूक्ष्माश्च सूक्ष्मस्थूलाश्च।
सूक्ष्मा अति-सूक्ष्मा इति धरादयो भवन्ति षड्-भेदाः।।२१।।
भू-पर्वताद्या भणिता अति-स्थूलस्थूलाः इति स्कन्धाः।
स्थूला इति विज्ञेयाः सर्पिर्जल-तैलाद्याः।।२२।।
छायातपाद्याः स्थूलेतर-स्कन्धा इति विजानीहि।
सूक्ष्म-स्थूला इति भणिताः स्कन्धाश्चतुरक्ष-विषयाश्च।।२३।।
सूक्ष्मा भवन्ति स्कन्धाः प्रायोग्याः कर्म-वर्गणस्य पुनः।
तद्विपरीताः स्कन्धाः अति-सूक्ष्मा इति प्ररूपयन्ति।।२४।।

विभावपुद्गलस्वरूपाख्यानमेतत्। अतिस्थूलस्थूला हि ते खलु पुद्गलाः सुमेरु-कुम्भिनीप्रभृतयः। घृततैलतक्रक्षीरजलप्रभृतिसमस्तद्रव्याणि हि स्थूलपुद्गलाश्च। छाया-तपतमःप्रभृतयः स्थूलसूक्ष्मपुद्गलाः। स्पर्शनरसनघ्राणश्रोत्रेन्द्रियाणां विषयाः सूक्ष्मस्थूल-पुद्गलाः शब्दस्पर्शरसगन्धाः। शुभाशुभपरिणामद्वारेणागच्छतां शुभाशुभकर्मणां योग्याः सूक्ष्मपुद्गलाः। एतेषां विपरीताः सूक्ष्मसूक्ष्मपुद्गलाः कर्मणामप्रायोग्या इत्यर्थः। अयं विभाव-पुद्गलक्रमः।

तथा चोक्तं पञ्चास्तिकायसमये ह्न

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपाओग्गा।
कम्मातीदा एवं छब्भेया पोग्गला होंति।।

उक्तं च मार्गप्रकाशे ह्न

(अनुष्टुप्)

स्थूलस्थूलास्ततः स्थूलाः स्थूलसूक्ष्मास्ततः परे।
सूक्ष्मस्थूलास्ततः सूक्ष्माः सूक्ष्मसूक्ष्मास्ततः परे।।

तथा चोक्तं श्रीमदमृतचन्द्रसूरिभिः ह्न

(वसंततिलका)

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाट्ये,
वर्णादिमान्नटति पुद्गल एव नान्यः।
रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्ध-
चैतन्यधातु-मय-मूर्तिरयं च जीवः।।

तथाहि ह्न

अतिस्थूलस्थूल रु स्थूल-सूक्ष्म, सूक्ष्म-स्थूल रु सूक्ष्म ये।
अतिसूक्ष्म, यों छै भेद पृथ्वी आदि पुद्गलस्कन्ध के॥२१॥

भू, भूमिधर इत्यादि ये अतिस्थूल स्कन्ध प्रमानिये।
घृत, तैल, जल इत्यादि इनको स्थूल स्कन्ध सु जानिये॥२२॥

आताप, छाया स्थूलसूक्ष्म स्कन्ध निश्चय कीजिए।
अरु स्कन्ध सूक्ष्मस्थूल चारों अक्ष से गहि लीजिए॥२३॥

कार्माणवर्गण योग्य पञ्चम स्कन्ध सूक्ष्म स्कन्ध है।
विपरीत जो इस योग्य नहिं अतिसूक्ष्म पुद्गल स्कन्ध है॥२४॥

अन्वयार्थ :—[अतिस्थूलस्थूलाः] अतिस्थूलस्थूल, [स्थूलाः] स्थूल, [स्थूल-सूक्ष्माः च] स्थूलसूक्ष्म, [सूक्ष्मस्थूलाः च] सूक्ष्मस्थूल, [सूक्ष्माः] सूक्ष्म, और [अति-सूक्ष्माः] अतिसूक्ष्म [इति] ऐसे [धरादयः षट्भेदाः भवन्ति] पृथ्वी आदि स्कन्धों के छह भेद हैं।

[भूपर्वताद्याः] भूमि, पर्वत आदि [अतिस्थूलस्थूलाः इति स्कन्धाः] अतिस्थूल-स्थूल स्कन्ध [भणिताः] कहे गये हैं; [सर्पिर्जलतैलाद्याः] घी, जल, तेल आदि [स्थूलाः इति विज्ञेया] स्थूल स्कन्ध जानना।

[छायातपाद्याः] छाया, आतप (धूप) आदि [स्थूलेतरस्कन्धाः इति] स्थूलसूक्ष्म स्कन्ध [विजानीहि] जान [च] और [चतुरक्षविषयाः स्कन्धाः] चार इन्द्रियों के विषयभूत स्कन्धों को [सूक्ष्मस्थूलाः इति] सूक्ष्मस्थूल [भणिता] कहा गया है।

[पुनः] और [कर्मवर्गणस्य प्रायोग्याः] कर्मवर्गणा के योग्य [स्कन्धाः] स्कन्ध, [सूक्ष्माः भवन्ति] सूक्ष्म हैं; [तद्विपरीताः] उनसे विपरीत (अर्थात्, कर्मवर्गणा को अयोग्य) [स्कन्धाः] स्कन्ध, [अतिसूक्ष्माः इति] अतिसूक्ष्म [प्ररूपयन्ति] कहे जाते हैं।

टीका :—यह, विभावपुद्गल के स्वरूप का कथन है।

सुमेरु, पृथ्वी आदि (घनपदार्थ) वास्तव में अतिस्थूलस्थूल पुद्गल हैं। घी, तेल, मट्ठा, दूध, जल आदि समस्त (प्रवाही) पदार्थ, स्थूल पुद्गल हैं। छाया, आतप, अंधकारादि, स्थूलसूक्ष्म पुद्गल हैं। स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय तथा श्रोत्रेन्द्रिय के विषय — स्पर्श, रस, गन्ध और शब्द — सूक्ष्मस्थूल पुद्गल हैं। शुभाशुभपरिणाम द्वारा आनेवाले, ऐसे शुभाशुभकर्मों को योग्य (स्कन्ध), वे सूक्ष्म पुद्गल हैं। उनसे विपरीत, अर्थात् कर्मों को अयोग्य (स्कन्ध), वे सूक्ष्म सूक्ष्म पुद्गल हैं — ऐसा (इन गाथाओं का) अर्थ है। यह विभावपुद्गल का क्रम है।

(भावार्थ :— स्कन्ध, छह प्रकार के हैं — १. काष्ठपाषाणादि जो स्कन्ध, छेदन किये जाने पर स्वयमेव जुड़ नहीं सकते, वे स्कन्ध अतिस्थूलस्थूल हैं। २. दूध, जल आदि जो स्कन्ध, छेदन किये जाने पर पुनः स्वयमेव जुड़ जाते हैं, वे स्कन्ध स्थूल हैं। ३. धूप, छाया, चाँदनी, अंधकार इत्यादि जो स्कन्ध, स्थूल ज्ञात होने पर भी भेदे नहीं जा सकते या हस्तादिक से ग्रहण नहीं किये जा सकते, वे स्कन्ध स्थूलसूक्ष्म हैं। ४. आँख से न दिखनेवाले ऐसे जो चार इन्द्रियों के विषयभूत स्कन्ध, सूक्ष्म होने पर भी स्थूल ज्ञात होते हैं। (स्पर्शनेन्द्रिय से स्पर्श किये जा सकते हैं, जीभ से आस्वादन किये जा सकते हैं, नाक से सूंघे जा सकते हैं अथवा कान से सुने जा सकते हैं) वे स्कन्ध सूक्ष्मस्थूल हैं। ५. इन्द्रियज्ञान को अगोचर, ऐसे जो कर्मवर्गणारूप स्कन्ध, वे स्कन्ध

सूक्ष्म हैं। ६. कर्मवर्गणा से नीचे के (कर्मवर्गणातीत) जो अत्यन्त सूक्ष्म, द्वि-अणुकपर्यन्त स्कन्ध सूक्ष्मसूक्ष्म हैं।)

इसी प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री पंचास्तिकायसमय में (*गाथा द्वारा) कहा है कि —

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपाओग्गा।
कम्मातीदा एवं छब्भेया पोग्गला होंति।।

(*गाथार्थ :—*) पृथ्वी, जल, छाया, चार इन्द्रियों के विषयभूत, कर्म के योग्य और कर्मातीत — इस प्रकार पुद्गल (स्कन्ध) छह प्रकार के हैं।

और मार्गप्रकाश में (श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

स्थूलस्थूल स्थूल और स्थूल सूक्ष्म अरु सूक्ष्म स्थूल।
छह प्रकार स्कन्ध लखों ये सूक्ष्म और जो हैं अतिसूक्ष्म॥

*श्लोकार्थ :—*स्थूलस्थूल, पश्चात् स्थूल, तत्पश्चात् स्थूलसूक्ष्म, पश्चात् सूक्ष्मस्थूल, पश्चात् सूक्ष्म और तत्पश्चात् सूक्ष्मसूक्ष्म (इस प्रकार स्कन्ध, छह प्रकार के हैं।)

इस प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ४४वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

इस अनादि अविवेकरूप अज्ञान भाव के नाटक में।
वर्णादिक गुणयुक्त एक पुद्गल ही नाचे, अन्य नहीं॥
रागादिक पुद्गल विकार से सदा विलक्षण यह चेतन।
एक शुद्ध चैतन्य धातुमय मूर्तिरूप है यह चेतन॥

'*श्लोकार्थ :—*इस अनादिकालीन महा-अविवेक के नाटक में अथवा नाच में वर्णादिमान् पुद्गल ही नाचता है; अन्य कोई नहीं, (अभेदज्ञान में पुद्गल ही अनेक प्रकार का दिखाई देता है; जीव तो अनेक प्रकार का है नहीं;) और यह जीव तो रागादिक पुद्गलविकारों से विलक्षण, शुद्ध चैतन्यधातुमय मूर्ति है।'

* देखो, श्री परमश्रुतप्रभावकमण्डल द्वारा प्रकाशित पंचास्तिकाय, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ-१३०

गाथा-२१ से २४ पर प्रवचन

अइथूलथूल-थूलं थूलस्सुहुमं च सुहुमथूलं च।
सुहुमं अइसुहुमं इदि धरादियं होदि छब्भेयं।।२१।।
भूपव्वदमादीया भणिदा अइथूलथूलमिदि खंधा।
थूला इदि विण्णेया सप्पीजलतेल्लमादीया।।२२।।
छायातवमादीया थूलेदरखंधमिदि वियाणाहि।
सुहुमथूलेदि भणिया खंधा चउरक्खविसया य।।२३।।
सुहुमा हवंति खंधा पाओग्गा कम्मवग्गणस्स पुणो।
तव्विवरीया खंधा अइ-सुहुमा इदि परूवेंति।।२४।।

नीचे हरिगीत—

अतिस्थूलस्थूल रु स्थूल-सूक्ष्म, सूक्ष्म-स्थूल रु सूक्ष्म ये।
अतिसूक्ष्म, यों छै भेद पृथ्वी आदि पुद्गलस्कन्ध के॥२१॥
भू, भूमिधर इत्यादि ये अतिस्थूल स्कन्ध प्रमानिये।
घृत, तैल, जल इत्यादि इनको स्थूल स्कन्ध सु जानिये॥२२॥
आताप, छाया स्थूलसूक्ष्म स्कन्ध निश्चय कीजिए।
अरु स्कन्ध सूक्ष्मस्थूल चारों अक्ष से गहि लीजिए॥२३॥
कार्माणवर्गण योग्य पञ्चम स्कन्ध सूक्ष्म स्कन्ध है।
विपरीत जो इस योग्य नहिं अतिसूक्ष्म पुद्गल स्कन्ध है॥२४॥

***टीका :*—यह, विभावपुद्गल के स्वरूप का कथन है।** इसकी टीका। परमाणु स्वभावपुद्गल की साधारण व्याख्या आ गयी। विशेष आगे कहेंगे। कार्य और कारण परमाणु। बहुत परमाणु इकट्ठे होते हैं और पृथक् पड़ते हैं, उनकी क्रिया जड़ की है। वह आत्मा की क्रिया बिल्कुल नहीं है। उसे जानकर परमाणु ऐसे प्रकार के हैं, उनकी स्थिति ऐसी है, जानकर तो उनसे लक्ष्य छोड़कर स्वरूप की दृष्टि करना, इसलिए यह बात है। जिसके ऊपर से लक्ष्य छोड़ना है, वह भी चीज़ क्या है? उसे तो इसे जाननी चाहिए न!

सुमेरु, (पर्वत) पृथ्वी आदि (घनपदार्थ) वास्तव में अतिस्थूलस्थूल पुद्गल हैं। स्थूल-स्थूल पुद्गल हैं। स्थूल-स्थूल। मेरुपर्वत आदि टुकड़े होकर अपने आप इकट्ठे नहीं होते, ऐसी वह चीज़ है, इसलिए उसे स्थूल-स्थूल कहते हैं। **घी, तेल, मट्ठा, दूध, जल आदि समस्त (प्रवाही) पदार्थ, स्थूल पुद्गल हैं। छाया, आतप, अंधकारादि, स्थूलसूक्ष्म पुद्गल हैं। स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय तथा श्रोत्रेन्द्रिय के विषय—स्पर्श, रस, गन्ध और शब्द—सूक्ष्मस्थूल पुद्गल हैं। शुभाशुभपरिणाम द्वारा आनेवाले, ऐसे शुभाशुभकर्मों को योग्य (स्कन्ध), वे सूक्ष्म पुद्गल हैं। उनसे विपरीत, अर्थात् कर्मों को अयोग्य (स्कन्ध), वे सूक्ष्म सूक्ष्म पुद्गल हैं—ऐसा (इन गाथाओं का) अर्थ है। यह विभावपुद्गल का क्रम है।** पाठ में तो इतना है। इसके अर्थ का स्पष्टीकरण करते हैं।

परमाणु के पिण्ड को यहाँ स्कन्ध कहते हैं। परमाणु के बहुत भाग के इकट्ठे को स्कन्ध पिण्ड कहते हैं। वे स्कन्ध छह प्रकार के हैं। **(१) काष्ठपाषाणादि जो स्कन्ध, छेदन किये जाने पर स्वयमेव जुड़ नहीं सकते, वे स्कन्ध अतिस्थूलस्थूल हैं।** टुकड़े हों तो अपने आप इकट्ठे नहीं होते। **(२) दूध, जल आदि जो स्कन्ध, छेदन किये जाने पर पुनः स्वयमेव जुड़ जाते हैं, वे स्कन्ध स्थूल हैं।** तेल, घी ऐसे पृथक् पड़ें और इकट्ठे हो जायें, ऐसा उनका स्वभाव है। वह पुद्गल का, जड़ का स्वभाव है, ऐसा कहते हैं।

(३) धूप, छाया, चाँदनी, अंधकार इत्यादि जो स्कन्ध, स्थूल ज्ञात होने पर भी भेदे नहीं जा सकते या हस्तादिक से ग्रहण नहीं किये जा सकते,... प्रकाश, छाया को पकड़ा जा सकता है कहीं? पकड़ा जा सकता है? इसलिए **वे स्कन्ध स्थूलसूक्ष्म हैं। (४) आँख से न दिखनेवाले ऐसे जो चार इन्द्रियों के विषयभूत स्कन्ध, सूक्ष्म होने पर भी स्थूल ज्ञात होते हैं। (स्पर्शनेन्द्रिय से स्पर्श किये जा सकते हैं, जीभ से आस्वादन किये जा सकते हैं,...)** यह निमित्त से कथन है, हों! आस्वादे जा सकते हैं का अर्थ, निमित्त में इसकी जीभ जुड़ती है, इतनी बात है। समझ में आया? भाई! एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। यहाँ फिर आस्वादा जा सकता है। है न? स्पर्श किया जा सकता है। यह व्यवहारनय के कथनों से पुद्गलों की जाति को समझाते हैं।

(जीभ से आस्वादन किये जा सकते हैं, नाक से सूंघे जा सकते हैं अथवा कान से सुने जा सकते हैं) वे स्कन्ध सूक्ष्मस्थूल हैं। ५. इन्द्रियज्ञान को अगोचर, ऐसे जो कर्मवर्गणारूप स्कन्ध, वे स्कन्ध सूक्ष्म हैं। ६. कर्मवर्गणा से नीचे के (कर्मवर्गणातीत) जो अत्यन्त सूक्ष्म, द्वि-अणुकपर्यन्त स्कन्ध सूक्ष्मसूक्ष्म हैं। यहाँ परमाणु नहीं लेना है। स्कन्ध के भेद हैं न, इसलिए दो परमाणु से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्मसूक्ष्म।

इसी प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री पंचास्तिकायसमय में (देखो, श्री परमश्रुतप्रभावकमण्डल द्वारा प्रकाशित पंचास्तिकाय, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ-१३०) कहा है कि —

'पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपाओग्गा।
कम्मातीदा एवं छब्भेया पोग्गला होंति॥'

पंचास्तिकाय में श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने कहा है। यहाँ नियमसार में कहा है, वह भी कुन्दकुन्दाचार्य का है।

पृथ्वी, जल, छाया, चार इन्द्रियों के विषयभूत, कर्म के योग्य और कर्मातीत — इस प्रकार पुद्गल (स्कन्ध) छह प्रकार के हैं। इसमें कहीं लम्बा स्पष्टीकरण बहुत चले, ऐसा नहीं है। सेठी! **और मार्गप्रकाश में (श्लोक द्वारा) कहा है कि —**

स्थूलस्थूलास्ततः स्थूलाः स्थूलसूक्ष्मास्ततः परे।
सूक्ष्मस्थूलास्ततः सूक्ष्माः सूक्ष्मसूक्ष्मास्ततः परे॥

इसमें भी छह के नाम हैं। **स्थूलस्थूल, पश्चात् स्थूल, तत्पश्चात् स्थूलसूक्ष्म, पश्चात् सूक्ष्मस्थूल, पश्चात् सूक्ष्म और तत्पश्चात् सूक्ष्मसूक्ष्म (इस प्रकार स्कन्ध, छह प्रकार के हैं।) इस प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ४४वें श्लोक द्वारा) कहा है कि—** यह समयसार का कलश है।

'अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाटये
वर्णादिमान् नटति पुद्गल एव नान्यः।
रागादि-पुद्गल-विकारविरुद्ध-शुद्ध-
चैतन्यधातुमयमूर्तिरयं च जीवः॥'

देखो ! डाला, अरे ! **इस अनादिकालीन महा-अविवेक के नाटक में...** भगवान तो ज्ञानानन्द सहजानन्दमूर्ति आत्मा है। उसमें पुण्य-पाप के विकल्प और शरीरादि सब पुद्गल है। उन सब पुद्गलों का यह नाटक है। भगवान आत्मा तो सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध आनन्द और ज्ञान का घन है। उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। उसकी दृष्टि हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। इन सब भेदों से जो यह वर्णन चलता है, वह ऐसा कहते हैं। **अविवेक के नाटक में अथवा नाच में वर्णादिमान् पुद्गल ही नाचता है;...** यह नाचे, हिले, चले, यह सब बोले, वे सब पुद्गल जड़ हैं। आत्मा बोले नहीं, आत्मा हिले नहीं, आत्मा शरीर का कुछ करे नहीं।

यहाँ तो ऐसा कहना है, आत्मा तो चिदानन्द प्रभु ध्रुवस्वरूप अखण्ड आनन्दकन्द वह आत्मा है। वह आत्मा कहीं राग में या शरीर की क्रिया में नहीं आता। दया, दान, व्रत के विकल्प उठें, उनमें कहीं आत्मा नहीं आता, वे तो अनात्मा हैं। उस अनात्मा का सब नाटक है, कहते हैं। आहा..हा.. ! **अन्य कोई नहीं,...** उन वर्णादि में पुद्गल ही परिणमता है, आत्मा नहीं। आहा..हा.. ! आत्मा तो उसे कहते हैं कि जो आत्मा आनन्द और ज्ञान का पिण्ड, वह अभेदस्वरूप जो प्रभु, उसमें राग का या पर का भेद ही नहीं। ऐसे आत्मा की अन्तर्दृष्टि होना, उसका नाम प्रथम धर्म और सम्यग्दर्शन कहा जाता है। यहाँ तो कहते हैं कि दया, दान, व्रत, भक्ति पूजा का भाव, वह सब पुद्गल का नाटक है - ऐसा कहते हैं। ऐई ! पण्डितजी ! आहा..हा.. ! भारी कठिन ! वह सब अजीव का नाटक है। भगवान उसमें नहीं आता।

(अभेदज्ञान में पुद्गल ही अनेक प्रकार का दिखाई देता है; जीव तो अनेक प्रकार का है नहीं;) और यह जीव तो रागादिक पुद्गलविकारों से विलक्षण,... देखो ! भगवान आत्मा शरीर, वाणी, स्कन्ध और परमाणु से तो भिन्न है, परन्तु दया, दान, व्रत, आदि के परिणाम से भी भिन्न-विलक्षण है। समझ में आया ? आहा..हा.. ! ऐसा आत्मा अन्दर ज्ञानानन्द राग से-विकल्प से भिन्न, ऐसे आत्मा का अन्तरभान और श्रद्धा हो, उसे धर्म की पहली दशा कहते हैं। बाकी धर्म-वर्म नहीं, ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

यह जीव तो रागादिक पुद्गलविकारों से... भाषा ऐसी ली है। यह स्कन्धों का तो वर्णन किया, परमाणु का किया परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा में होनेवाले शुभ और

अशुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण, यात्रा आदि यह सब विकल्प, पुद्गल का विकार है। है ? आहा..हा.. ! ये सब पुद्गल के ठाठ-बाट हैं। आहा..हा.. ! भगवान आत्मा तो चिदानन्द ज्ञानानन्दस्वरूप है। आहा..हा.. ! उसकी पर्याय में पुद्गल के निमित्त से होते (भाव), वे सब उसके हैं, आत्मा के नहीं। समझ में आया ?

रागादिक पुद्गलविकारों... ऐसा कहा न ? क्या कहा ? ये पंच महाव्रत के परिणाम / विकल्प, दया, दान यात्रा का राग, भक्ति-पूजा का राग, वह सब पुद्गल का विकार है। कहो, सेठी! आत्मा की जाति में वह है नहीं। कर्मपुद्गल जड़ है। उसके संग में फड़फड़ाहट सब पुद्गल का विकार है। भगवान आत्मा उससे भिन्न है। आहा..हा.. ! कहो, समझ में आया ? भाषा क्या है ? **यह जीव तो रागादिक पुद्गलविकारों से विलक्षण,...** ऐसा है न ? यह समयसार की गाथा (कलश) है। **रागादिक पुद्गलविकारों से विलक्षण, शुद्ध...** परमाणु और यह छह प्रकार के स्कन्ध, इनसे तो आत्मा विरुद्ध-शुद्ध है, परन्तु पुण्य और पाप के विकल्प, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध, ऐसे विकल्प (उत्पन्न हों), वह भी पुद्गल का विकार है। उससे भगवान आत्मा विलक्षण है। यह लक्षण उसका नहीं, ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! एक शब्द में कितना डाला, देखो ! समझ में आया ?

अनन्त परमाणु कर्म के स्कन्ध-पिण्ड के लक्ष्य से होनेवाला विकार। वे पुण्य-पाप के भाव कहीं आत्मा के लक्ष्य से नहीं होते। कहते हैं कि पुद्गल जो कर्म है, वह जड़ है, अनन्त स्कन्ध है। स्कन्ध की व्याख्या आयी न ? तो उस स्कन्ध के लक्ष्य से, स्कन्ध के अस्तित्व पर लक्ष्य जाने से जो कुछ पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम होते हैं, उन्हें पुद्गल का विकार कहने में आता है। उनसे भगवान आत्मा विलक्षण है। विलक्षण अर्थात् भिन्न चीज़ है। रागादि का लक्षण आत्मा में है नहीं। आहा..हा.. ! समझ में आया ? स्कन्ध में, पुद्गल में फिर यह डाला। कहो, समझ में आया ? चूड़ी तो पुद्गल है, कर्म पुद्गल है, परन्तु उनके लक्ष्य से होनेवाला विकल्प, वह पुद्गल का विकार है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : कल आप ऐसा कहते थे कि यह तो सम्यग्दृष्टि के लिये है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अज्ञानी को होता है परन्तु वह पुद्गल का ही विकार है। वह जीव का स्वभाव नहीं। वह तो स्वभाव की दृष्टि होने पर, रागादि का अल्पपना रहा, वह परिणमन उसकी दशा में है, ऐसा ज्ञान जानता है, परन्तु वस्तु के स्वभाव की दृष्टि से देखने

पर, दृष्टि से-स्वभाव से देखने पर... समझ में आया ? वह पर है; आत्मा का स्वभाव नहीं। समझ में आया ? एक शब्द पूरा... समयसार नाटक का श्लोक है। पाठ में है न ? '**अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाटये**' एकदम द्रव्यस्वभाव को वर्णन करना है न ! '**वर्णादिमान् नटति पुद्गल एव नान्यः।**'

इस जगत के पुद्गल नाचे। भगवान तो एकरूप अभेद है, वह अनेक में कैसे आवे, ऐसा कहते हैं। शरीर, वाणी, मन, यह सब नाटक जड़ का नाटक है। आत्मा का नाटक यह है नहीं। तदुपरान्त रागादि पुद्गल विकार, पुण्य और पाप के भाव, ये सब पुद्गल के विकृत भाव हैं। वस्तु के द्रव्यस्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से। पश्चात् ज्ञान करे, तब जानता है कि राग का भाव जरा पर्याय में है, ऐसा जाने। ज्ञान का स्व और पर दोनों को जानने का स्वभाव है, इसलिए उसे ऐसा कहा। दृष्टि का तो अकेला निर्विकल्प स्वभाव है, अभेद देखने का स्वभाव है, इसलिए उन्हें—रागादि को पुद्गल का विकार कहकर, उससे कोई विलक्षण आत्मा है (ऐसा कहा)। समझ में आया ?

'**रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्ध-**' लो, विरुद्ध का अर्थ विलक्षण किया। क्या कहा ? यह आत्मा जो वस्तु भगवान आत्मा जो अन्दर है, उसे आत्मा कहते हैं कि जो राग, दया, दान, काम, क्रोध, विकल्प हैं, उन पुद्गल के विकार से आत्मा विरुद्ध है। आत्मा के स्वभाव से, पुण्य-पाप के भाव विरुद्ध हैं और उनसे आत्मा विरुद्ध है। समझ में आया ? विरुद्ध है। रागादिभाव से आत्मा विरुद्ध है। आत्मा के स्वभाव से रागादि विरुद्ध है, यह तो ठीक परन्तु यहाँ तो अजीव का अधिकार है न ? वहाँ भी अजीव अधिकार ही अन्तिम आता है न ? समझ में आया ?

राग, पुण्य-पाप आदि भाव, पुद्गल विकार से आत्मा अत्यन्त विरुद्धस्वरूप है। क्योंकि वे अजीवस्वभाव हैं और भगवान जीवस्वभाव है, इसलिए वे विरुद्धभाव हैं। आहा..हा..! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प शुभोपयोग भी पुद्गल का विभाव है। उनसे आत्मा विरुद्ध है। आहा..हा..! ऐसा आत्मा अन्दर राग से रहित, विकल्प से रहित, अकेले आनन्द और शान्ति से सहित, उसका अनुभव करना और आनन्द का स्वाद आवे, अतीन्द्रिय स्वाद के अनुभव में सुख भासे, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहने में आता है। कहो, सेठी !

मुमुक्षु : विकार होता है जीव के भाव में।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव में (होता है) परन्तु वह पर्याय में पर के लक्ष्य से होता है, इस अपेक्षा से पर का कहकर निकाल दिया है। इससे (जीव से) विरुद्ध है। राग बन्ध का कारण है; स्वभाव अबन्धस्वरूप है। राग विपरीत है, स्वभाव चैतन्य उसका अविपरीत भाव है। यह तो ७२ गाथा में आया न? राग विपरीत भाव है '**विवरीयं**' राग आदि आत्मा से विपरीत है, ऐसा वहाँ आया था। आस्रव अधिकार में उससे विपरीत यह है, ऐसा आया। समझ में आया?

शुभ और अशुभभाव... वहाँ (समयसार, गाथा) ७२ में कर्ताकर्म में आया न? '**असुचितं विवरीय दुक्खस्स कारणं**' आहा..हा..! शुभभाव दुःख का कारण है। शुभभाव, शुभ उपयोग वह दुःख का कारण है। वह आत्मा से विपरीत है, वहाँ आस्रव में कहा था। कर्ताकर्म है न, वहाँ आस्रव है न।

मुमुक्षु : आत्मा का सुखस्वभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा का सुखस्वभाव है तो वह रागादि से विलक्षण स्वभाव, दुःख से विपरीत स्वभाव है। आहा..हा..! द्रव्यसंग्रह में आता है न? बसन्तीलाल ने यह प्रश्न किया था न? ५६ गाथा। '**मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह**' वह आज वापस देखा, हों! श्लोक पूरा आता नहीं था न, अभी देखा। कल तुम्हारा प्रश्न था न? भाई! कहते हैं कि '**मा चिट्ठह**' काया के व्यापार से पृथक् हो। काया का व्यापार, वह तेरा नहीं है। ऐसा होना.. ऐसा होना.. ऐसा होना.. वह सब काया का व्यापार है। '**मा जंपह**' बोलना नहीं, कुछ बोलना नहीं। अन्तर्जल्प छोड़ दे। '**मा चिन्तह**' मन लिया। काया, मन और वचन। '**मा चिन्तह**' भगवान आत्मा... यह कल पूछा था न? रात्रि में चिन्तव तक आया था। दूसरा शब्द भूल गये थे। ....

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। '**मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह**' चिन्तवन मत कर। मन के विकल्प मत कर, ऐसा कहते हैं। '**चिन्तह किंवि जेण होइ थिरो**' जिससे स्थिर होगा। '**अप्पा अप्पम्मि रओ**' है? आत्मा, आत्मा में अर्थात् आत्मा ज्ञान-दर्शन-आनन्दस्वभाव में '**अप्पा अप्पम्मि रओ**' इसमें लीन होगा, उसका नाम ध्यान; उसका नाम मोक्ष का मार्ग;

उसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र; उसका नाम शुद्धोपयोग। आहा..हा..! उसने यह प्रश्न किया था। रात्रि में यहाँ तक आया था। '**मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह**' पहला आ गया था। '**मा चिन्तह**' देह जड़ है, पुद्गल है। वाणी का, बोलने का विकल्प अन्दर उठे, वह जल्प छोड़, वह तेरा स्वरूप नहीं है। पुद्गलस्वरूप है। मन का राग छूटे, वह भी पुद्गलस्वरूप है। आहा..हा..! '**जेण होइ थिरो**' वस्तु चिद्बिम्बघन आनन्दकन्द पड़ी है। एक विकल्प के पीछे अथवा एक समय की पर्याय के पीछे। समझ में आया? मन, वचन और काया के तीनों सम्बन्ध को दृष्टि में से छोड़, ऐसा कहते हैं और जिससे अन्दर स्थिर होगा। आत्मा ज्ञान, दर्शन और आनन्द में स्थिर होगा। '**अप्पा अप्पम्मि रओ**' आत्मा, आत्मा का जानने-देखने और आनन्द का स्वभाव, उसमें स्थिर होगा, उसका नाम भगवान मोक्ष का मार्ग-ध्यान कहते हैं। वह ध्यान शुद्धोपयोग है, वह मोक्ष का मार्ग है। आहा..हा..! जगत को भारी कठिन।

यह यहाँ कहा। **यह जीव तो रागादिक पुद्गलविकारों से विलक्षण,...** एक शब्द में तो कितना डाल दिया! आहा..हा..! इन छह स्कन्धों का लक्ष्य छोड़। ये तुझमें नहीं, तेरे नहीं। स्कन्धों में तो सब आया न? शरीर, वाणी, मन, कर्म, दाल, भात, सब्जी, पैसा, यह सब स्कन्ध में आ गया या नहीं? पैसा स्कन्ध में आ गया? पैसा तेरा नहीं, वह पुद्गल का है, ऐसा कहते हैं। दाल, भात, रोटी, पानी, मौसम्बी, वह तेरे नहीं, वे तो पुद्गल के स्कन्ध हैं। वे तो जड़ के स्कन्ध हैं, जड़ का जत्था है। तेरे कारण वे नहीं और तू उनमें नहीं और वे तुझमें नहीं। आहा..हा..!

तू कौन? पुण्य और पाप के पुद्गलविकार से विरुद्ध तेरा स्वरूप है। आहा..हा..! तब है क्या? यह तो विरुद्ध कहा। नास्ति से कहा। अस्ति क्या? शुद्ध **चैतन्यधातुमय मूर्ति है।** अकेला शुद्ध-ज्ञान-आनन्द, अतीन्द्रिय अनाकुल शान्तरस, आनन्दरस, शान्तरस अर्थात् चारित्र। आनन्दरस, सुखरस, ऐसे चैतन्यधातुमय स्वरूप है। मूर्ति अर्थात् स्वरूप। तेरा तो शुद्ध चैतन्यधातु चैतन्यपना जिसने धारण कर रखा है। इस पुण्य-पाप को जीव ने धार नहीं रखा है। आहा..हा..! ऐसा आत्मा कि जिसने ज्ञान, दर्शन, आनन्द को धारा है, रखा है, उसे आत्मा कहते हैं। पुण्य-पाप, शरीर, वाणी को रखा नहीं, उसे धारा नहीं। इस श्लोक को समयसार का आधार दिया है।

और (इन गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव विविध प्रकार के पुद्गलों में रति न करके, चैतन्यचमत्कारमात्र आत्मा में ही रति करना, ऐसा श्लोक द्वारा कहते हैं) —

श्लोक-३८

और (इन गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव विविध प्रकार के पुद्गलों में रति न करके, चैतन्यचमत्कारमात्र आत्मा में ही रति करना, ऐसा श्लोक द्वारा कहते हैं) —

(मालिनी)

इति विविधविकल्पे पुद्गले दृश्यमाने,
न च कुरु रतिभावं भव्यशार्दूल तस्मिन्।
कुरु रति-मतुलां त्वं चिच्चमत्कार-मात्रे,
भवसि हि परमश्रीकामिनीकामरूपः ।।३८।।

(वीरछन्द)

विविध भेद वाले पुद्गल के दृष्टिगोचर होने पर।
हे भव्योत्तम! तू इनके प्रति किञ्चित भी रतिभाव न कर॥
केवल चेतन चमत्कारमय निज आतम में तू रति कर।
इससे होगा परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ वर॥३८॥

श्लोकार्थ :—इस प्रकार विविध भेदोंवाला पुद्गल दिखाई देने से, हे भव्यशार्दूल! (भव्योत्तम!) तू उसमें रतिभाव न कर! चैतन्यचमत्कारमात्र में (अर्थात्, चैतन्यचमत्कारमात्र आत्मा में) तू अतुल रति कर कि जिससे तू परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ होगा॥३८॥

श्लोक-३८ पर प्रवचन

इति विविधविकल्पे पुद्गले दृश्यमाने,
न च कुरु रतिभावं भव्यशार्दूल तस्मिन्।

कुरु रति-मतुलां त्वं चिच्चमत्कार-मात्रे,
भवसि हि परमश्रीकामिनीकामरूपः ।।३८।।

हे भव्यसिंह! हे भव्य शार्दूल! ऐसा कहते हैं। सिंह तो हिरण को फाड़कर चीर डालता है। इसी प्रकार, हे भव्य! रागादि को चीर डाल, वे तो भिन्न हैं, तेरी चीज़ में नहीं हैं। आहा..हा..!

इस प्रकार विविध भेदोंवाला पुद्गल... आत्मा तो कुछ भेद है नहीं, वह तो पहले कह गये। **इस प्रकार विविध भेदोंवाला पुद्गल दिखाई देने से,...** ऐसा लिखा है न? **दृश्यमाने,** दिखाई देता है, वह कहीं तेरी चीज़ नहीं है। आहा..हा..! शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, वे सब विविध पुद्गल दिखाई देते हैं। पुद्गल की जाति है। काली हो, सफेद हो, कोमल हो, आकार गोल हो, चपटा हो, वे सब विविध प्रकार के पुद्गल दिखाई देते हैं, उनमें तू नहीं और वे कोई तुझमें नहीं। आहा..हा..! भाषा नहीं। इसकी वस्तु अस्ति समझना चाहिए। समझ में आया?

हे भव्यशार्दूल! (भव्योत्तम!)... भव्य में उत्तम प्राणी! तेरा मोक्ष अल्प (काल) में है, नजदीक में है, ऐसे प्राणी को सम्बोधन करते हैं। **तू उसमें रतिभाव न कर!** उस राग में रति न कर। आहा..हा..! जो तुझसे विरुद्ध और उससे तू विरुद्ध, ऐसे विरुद्धभाव में प्रेम न कर, भाई! तुझे दुःख, हिंसा होती है। रागादि में प्रेम करने से आत्मा चैतन्यचमत्काररूप नहीं रह सकता; घात हो जाता है। आहा..हा..! अब चैतन्यधातु में प्रेम कर देखो! **चैतन्यचमत्कारमात्र में...** ऐसी भाषा है न? **चैतन्यचमत्कारमात्र में...** यह तो चमत्कार है। जो अपने को जाने, राग को जाने, इतने-इतने विविध प्रकार के पुद्गलों को अपने में रहकर अपनी सामर्थ्य से अपना ज्ञान करे। आहा..हा..! ऐसा चमत्कारी जीव है, कहते हैं। वह चीज़ है, इसलिए जानने का काम करे, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया?

क्या कहते हैं? ये सब रागादिभाव और शरीरादि, ये स्कन्ध कहे, वे सब हैं; इसलिए चैतन्यभाव उन्हें जानने का अस्तित्व का भाव करता है, ऐसा नहीं है। वह तो चैतन्यचमत्कार वस्तु है कि जिसे पर की अपेक्षा नहीं और स्व तथा पर को जानने का कार्य चैतन्यचमत्कार से खड़ा होता है। समझ में आया? आहा..हा..!

एक अंगुली टूटे, आँख फूटे तो इसे अन्दर में कुछ हो जाये। हाय.. हाय.. मेरा अवयव टूटा, हों! एक अंगुली टूट जाये। यह दबाव में आ जाये न? दरवाजा बन्द करते हुए अन्दर घुस गयी। यह रेल में बहुत हो जाता है। वह दरवाजा करता हो और अंगुली चपेट में आ जाये। हाय.. हाय..! परन्तु क्या है? कहते हैं। विविध प्रकार की दशा उसे, उसकी अस्तित्व के कारण नहीं परन्तु तेरी अस्ति में चैतन्यचमत्कार है, इसलिए तू स्व और पर को जानने के स्वभाव को प्रगट करता है। आहा..हा..! समझ में आया? आँख फूटे, वहाँ अरे रे! एक आँख गयी, दो आँख से काम करते थे, एक आँख गयी। परन्तु आँख गयी, वह तो पुद्गल गया। तुझमें से क्या गया? पाँच-दस लाख रुपये हों, उसमें से पाँच हजार, दस हजार जाये तो पैसा गया, ऐसा कहता है। गये कहाँ? विविध प्रकार की दशा है, वह तुझे जानने को मिली। पहले यहाँ थे, ऐसा जाना था। पश्चात् गये, ऐसा जाना। यह तो जानना हुआ। चैतन्यचमत्कार है कि जो उसे जानने का ही काम करता है। आहा..हा..!

चैतन्यचमत्कारमात्र में (अर्थात्, चैतन्यचमत्कारमात्र आत्मा में) तू अतुल रति कर... अन्य में रति न कर। (इसमें) **अतुल रति कर...** जिसकी उपमा नहीं, ऐसा प्रेम अन्दर आत्मा में कर। समझ में आया? यहाँ से रति, प्रेम छोड़ दे। यदि आत्मा का हित करना हो और धर्म करना हो तो राग से लेकर परचीज़ में से प्रेम छोड़ दे। आहा..हा..! और भगवान शुद्ध चैतन्यमात्र चमत्कारमात्र आत्मा। **तू अतुल रति कर...** ठीक।

हे भव्यशार्दूल! सम्बोधन करके कहा है, हों! **कि जिससे तू परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ होगा।** भगवान आत्मा चैतन्यचमत्कार ज्ञानानन्दस्वभाव में यदि प्रेम करेगा तो तुझे मुक्ति मिलेगी। जो मुक्ति की दशा तुझसे कभी भिन्न नहीं पड़ेगी। इसका नाम वल्लभ। समझ में आया? है न? **वल्लभ होगा।** अर्थात् क्या? वह पर्याय कभी भिन्न नहीं पड़ेगी। आहा..हा..! आत्मा का चैतन्यचमत्कारस्वभाव है, उसमें अन्तर प्रेम करने से, उस अन्तर की अभेद पर्याय पूर्ण हुई, वह पूर्ण पर्याय अब दूर नहीं रहेगी। तुझसे एक समयमात्र भी दूर नहीं रहेगी। तुझे पूर्ण पर्याय वरण कर जायेगी। आहा..हा..! परन्तु यह प्रेम अन्दर आनन्द में, अनुभव में आनन्द में लेकर प्रेम कर, ऐसा कहते हैं।

परमश्री—परम लक्ष्मी, देखो! मुक्ति है, वह परम लक्ष्मीस्वरूप है। मुक्ति-मोक्ष है,

वह परमश्रीरूपी कामिनी है। इसकी परिणति, इसकी स्त्री है, उसका वल्लभ हो जायेगा। वह पर्याय तुझे कभी छोड़ेगी नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? राग का प्रेम करेगा तो राग तो छूट जायेगा। शरीर के पुद्गल का प्रेम करेगा तो पुद्गल छूट जायेगा। तेरा वल्लभ करने से नहीं रहेगा। वहाँ प्रियता जोड़ने से वह वस्तु नहीं रहेगी, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! इन चार गाथा के स्कन्ध की व्याख्या में यह रखा है। आहा..हा..! समझ में आया? स्कन्ध तेरे नहीं हैं, परमाणु तेरे नहीं हैं, परन्तु कर्मरूपी स्कन्ध के लक्ष्य से हुआ भाव भी तेरा नहीं है। उससे विरुद्ध स्वभाव तेरा है। अब स्वभाव, उस परमाणु का कारण और कार्य आया था न? उसका वर्णन करते हैं।

गाथा-२५

धाउचउक्कस्स पुणो जं हेऊ कारणं ति तं णेयो।
खंधाणं अवसाणं णादव्वो कज्ज-परमाणु।।२५।।

धातुचतुष्कस्य पुनः यो हेतुः कारणमिति स ज्ञेयः।
स्कन्धाना-मवसानो ज्ञातव्यः कार्य-परमाणुः।।२५।।

कारणकार्यपरमाणुद्रव्यस्वरूपाख्यानमेतत्। पृथिव्यप्तेजोवायवो धातवश्चत्वारः तेषां यो हेतुः स कारणपरमाणुः। स एव जघन्यपरमाणुः स्निग्धरूक्षगुणानामानन्त्याभावात् समविषमबन्धयोरयोग्य इत्यर्थः। स्निग्धरूक्षगुणानामनन्तत्वस्योपरि द्वाभ्यां चतुर्भिः समबन्धः त्रिभिः पञ्चभिर्विषमबन्धः। अयमुत्कृष्टपरमाणुः। गलतां पुद्गलद्रव्याणां अन्तोऽवसानस्तस्मिन् स्थितो यः स कार्यपरमाणुः। अणवश्चतुर्भेदाः कार्यकारणजघन्योत्कृष्टभेदैः तस्य परमाणुद्रव्यस्य स्वरूपस्थितत्वात् विभावाभावात् परमस्वभाव इति।

तथा चोक्तं प्रवचनसारे ह्न

णिद्धा वा लुक्खा वा अणुपरिणामा समा व विसमा वा।
समदो दुराधिगा जदि बज्झन्ति हि आदिपरिहीणा।।
णिद्धत्तणेण दुगुणो चदुगुणणिद्धेण बन्धमणुभवदि।
लुक्खेण वा तिगुणिदो अणु बज्झदि पंचगुणजुत्तो।।

तथाहि ह्न

जो हेतु धातु चतुष्क का कारण-अणु विख्यात है।
अरु स्कन्ध के अवसान में कार्याणु होता प्राप्त है॥२५॥

अन्वयार्थ :—[पुनः] फिर [यः] जो [धातुचतुष्कस्य] (पृथ्वी, जल, तेज, और वायु—इन) चार धातुओं का [हेतुः] हेतु है, [सः] वह [कारणम् इति ज्ञेयः] कारणपरमाणु जानना; [स्कन्धानाम्] स्कन्धों के [अवसानः] अवसान को (पृथक्

हुए अविभागी अन्तिम अंश को) [कार्यपरमाणुः] कार्यपरमाणु [ज्ञातव्यः] जानना।

टीका :—यह, कारणपरमाणुद्रव्य और कार्यपरमाणुद्रव्य के स्वरूप का कथन है।

पृथ्वी, जल, तेज, और वायु — ये चार धातुएँ हैं। उनका जो हेतु है, वह कारणपरमाणु है। वही (परमाणु), एक गुण स्निग्धता या रुक्षता होने से, सम या विषम बन्ध को अयोग्य, ऐसा जघन्य परमाणु है — ऐसा अर्थ है। एक गुण स्निग्धता या रूक्षता के ऊपर, दो गुणवाले का और चार गुणवाले * का समबन्ध होता है तथा तीन गुणवाले का और पाँच गुणवाले का विषमबन्ध * होता है, यह उत्कृष्ट परमाणु है। गलते, अर्थात् पृथक् होते पुद्गलद्रव्यों के अन्त में-अवसान में (अन्तिम दशा में) स्थित, वह कार्यपरमाणु है (अर्थात्, स्कन्ध खण्डित होते-होते जो छोटे से छोटा अविभागभाग रहता है, वह कार्यपरमाणु है)। (इस प्रकार) अणुओं के (परमाणुओं के) चार भेद हैं — कार्य, कारण, जघन्य, और उत्कृष्ट। वह परमाणुद्रव्य, स्वरूप में स्थित होने से, उसे विभाव का अभाव है, इसलिए (उसे) परमस्वभाव है।

इसी प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री प्रवचनसार में (१६५वीं तथा १६६वीं गाथा द्वारा) कहा है कि —

'णिद्धा वा लुक्खा वा अणुपरिणामा समा व विसमा वा।
समदो दुराधिगा जदि वज्झन्ति हि आदिपरिहीणा॥

णिद्धत्तणेण दुगुणो चदुगुणणिद्धेण बन्धमणुभवदि।
लुक्खेण वा तिगुणिदो अणु बज्झदि पंचगुणजुत्तो॥'

'(गाथार्थ :—) परमाणु के-परिणाम स्निग्ध हों या रूक्ष हों, सम अंशवाले हों या विषम अंशवाले हों, यदि समान की अपेक्षा दो अधिक अंशवाले हों, तो बँधते हैं; जघन्य अंशवाला नहीं बँधता।

स्निग्धरूप से दो अंशवाला परमाणु, चार अंशवाले स्निग्ध (अथवा रूक्ष) परमाणु के साथ बन्ध का अनुभव करता है अथवा रूक्षता से तीन अंशवाला परमाणु, पाँच अंशवाले के साथ जुड़ा हुआ बँधता है।'

---

* समबन्ध, अर्थात् सम संख्या के गुणवाले परमाणुओं का बन्ध और विषमबन्ध, अर्थात् विषम संख्या के गुणवाले परमाणुओं का बन्ध। यहाँ (टीका में) समबन्ध और विषमबन्ध का एक-एक उदाहरण दिया है, तदनुसार समस्त समबन्ध और विषमबन्ध समझ लेना।

गाथा-२५ पर प्रवचन

धाउचउक्कस्स पुणो जं हेऊ कारणं ति तं णेयो।
खंधाणं अवसाणं णादव्वो कज्ज-परमाणु।।२५।।

देखो! यह भाषा दूसरी पाठ में है। कार्यपरमाणु और कारणपरमाणु पाठ में है। इसलिए फिर कारणपरमात्मा और कार्यपरमात्मा इसमें से उठता है। तब परमाणुओं में ऐसा कहा, उसमें लागू पड़ता है। इन्होंने नया घर का डाला है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : घर का डाला हो तो भी ज्ञानी की बात है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; डाले परन्तु उसे ऐसा कि यह कहाँ से डाला? अमुक कहाँ से डाला? अमुक... अब सुन न। सब डाले।

जो हेतु धातु चतुष्क का कारण-अणु विख्यात है।
अरु स्कन्ध के अवसान में कार्याणु होता प्राप्त है॥२५॥

यह, कारणपरमाणुद्रव्य और कार्यपरमाणुद्रव्य के स्वरूप का कथन है। देखो! विशिष्टता क्या है? कि पृथ्वी के परमाणु का स्कन्ध होता है, जल के परमाणु का जो स्कन्ध होता है, वायु के, अग्नि के ये जो स्कन्ध हैं, यह चार धातु है। इनका हेतु वह कारणपरमाणु है। उनका हेतु जीव नहीं कि ये सब लड्डू बनाये और यह बनाया, इकट्ठा हुआ, अमुक हुआ... अमुक हुआ... यह पानी हुआ, पृथ्वी हुई, अग्नि हुई, वायु हुई। उनका हेतु तो कारणपरमाणु है। समझ में आया न? वह परमाणु कारण होकर सब स्कन्ध हुए हैं। जीव कारण होकर स्कन्ध होता है कि भाई! यह लड्डू बाँधो, रोटी बनाओ, यह अक्षर लिखे, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया? पहले कारणपरमाणु की व्याख्या की। **वही (परमाणु), एक गुण स्निग्धता...** देखो! भाषा तो गुण है। वास्तव में तो स्निग्धपर्याय है। भाई!

मुमुक्षु : यह पाईन्ट बताने का....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अगुरुलघु में अनन्त नहीं आया था? अनन्त अगुरुलघु। पंचास्तिकाय में अनन्त अगुरुलघु पर्याय की बात थी। भले गुण शब्द वहाँ प्रयोग किया हो। शब्द से पार नहीं आता। भाव क्या है, वह समझे तो हो। समकित को गुण कहा है, तुम क्या

फिर पर्याय कहते हो ? और वे ऐसा विवाद उठावे। आहा..हा.. ! गुण तो यहाँ कहा। **एक गुण स्निग्धता...** चिकनाई। स्पर्श वह गुण है। यह चिकनाई तो पर्याय है। परमाणु है रजकण, उसमें स्पर्श नाम का गुण है, वह त्रिकाली है। और यह स्निग्धता और चिकनाई तो पर्याय है।

मुमुक्षु : समकित के आठ गुण नहीं कहलाते ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा तो ऐसी ही बोले न, सिद्ध के (आठ गुण)। समकित के नि:शंक आदि आठ गुण कहलाते हैं न ? आठ आचार कहलाते हैं, आठ गुण कहलाते हैं, आठ लक्षण कहलाते हैं। गुण अर्थात् पर्याय है। झगडालू लड़के अन्दर से झगड़ा ही निकालते हैं। कुछ विवाद ही निकालते हैं। आहा..हा.. !

कहते हैं, परमाणु में एक पर्याय चिकनाहट की और एक पर्याय रूक्ष की। **सम या विषम बन्ध को अयोग्य,...** विषम बन्ध को अयोग्य **ऐसा जघन्य परमाणु...** वह जघन्य क्यों कहा ? (इसलिए) कि बन्ध होने के योग्य नहीं है, इसलिए हल्का / जघन्य कहा इसे। समझ में आया ? कारण क्यों कहा ? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु का कारण होता है, इसलिए यह कारणपरमाणु कहा। इसका कारण, वह स्कन्ध का कारण परमाणु है। स्कन्ध का कारण आत्मा और आत्मा का ज्ञान या विकल्प नहीं है। आहा..हा.. ! ये रुपये आते हैं और जाते हैं, उनका कारण उनका परमाणु है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यह तो जब हुए तब आवे, तब तो हमारे पास आते हैं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके पास आते हैं ? राग भी आत्मा के पास नहीं आता तो फिर पैसा कहाँ से आता था यहाँ ? ऐई ! पोपटभाई ! गजब बात, भाई !

राग से भी विरुद्ध चैतन्य का स्वभाव, वह राग भी स्वभाव के समीप में नहीं। वह तो दूर है। जैसे अजीव दूर है, वैसे वह दूर है। आहा..हा.. ! तत्त्व है न दूसरा। एक तत्त्व से दूसरा तत्त्व भिन्न हो तो ही दूसरा तत्त्व कहा जा सकता है। नहीं तो किस प्रकार कहा जा सकेगा ?

मुमुक्षु : दोपना जब....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोपना तो ठीक, परन्तु अन्य है, वह तो अन्य है। आहा..हा.. !

कहते हैं, एक गुण स्निग्ध, दो गुण स्निग्ध, रूक्ष, ऐसा। **सम या विषम बन्ध को**

अयोग्य,... सम या विषम। समझे न ? दो हो या चार हो, एक हो, तीन हो। परन्तु **बन्ध को अयोग्य, ऐसा जघन्य परमाणु है...** उसे जघन्य कहा। बन्ध के योग्य नहीं, उसे जघन्य कहा। **एक गुण स्निग्धता या रूक्षता के ऊपर, दो गुणवाले का और चार गुणवाले का समबन्ध होता है...** लो, यह तो दृष्टान्त है। **समबन्ध, अर्थात् सम संख्या के गुणवाले परमाणुओं का बन्ध और विषमबन्ध, अर्थात् विषम संख्या के गुणवाले परमाणुओं का बन्ध। यहाँ (टीका में) समबन्ध और विषमबन्ध का एक-एक उदाहरण दिया है, तदनुसार समस्त समबन्ध और विषमबन्ध समझ लेना।** इतना ही ऐसा न लेना। समझ में आया ? तीन और पाँच; फिर पाँच और सात; सात और नौ; ऐसा सब ले लेना। विषम में ऐसा लिया है, कहते हैं। दो और चार। दो और चार ही अकेला न लेना। यह तो दृष्टान्त है। छह और आठ; आठ और दस और बारह ऐसे सब में दो अधिक लेना।

तथा तीन गुणवाले का और पाँच गुणवाले का विषमबन्ध होता है, यह उत्कृष्ट परमाणु है। अर्थात् बन्ध के होने के योग्य, उसे उत्कृष्ट परमाणु कहा। उत्कृष्ट का अर्थ ऐसा नहीं कि अनन्त पर्यायरूप से परिणमा है उत्कृष्ट, ऐसा यहाँ नहीं कहना है। परमाणु अनन्त स्निग्धतारूप या रूक्षतारूप परिणमे तो उत्कृष्ट, ऐसा यहाँ नहीं कहना है। उत्कृष्ट परमाणु उसे कहते हैं कि जो सम, विषम आदि के बन्ध के योग्य हो, उसे उत्कृष्ट परमाणु कहा जाता है। बन्ध होने के अयोग्य को जघन्य और बन्ध होने के योग्य को, फिर भले तीन और पाँच, दो और चार, छह और आठ, नौ और ग्यारह हो, परन्तु उन सबको उत्कृष्ट परमाणु कहा जाता है। पण्डितजी ! यह प्रकार ही अलग है। आहा..हा.. ! अर्थात् कि उस परमाणु में दूसरे के साथ सम्बन्ध होने की योग्यता हुई, इसलिए उसे उत्कृष्ट परमाणु कहा। आहा..हा.. ! नियमसार की भाषा ही अलग प्रकार की है। पाठ में है, देखो न ! कार्य-कारण तो पाठ में है। उसमें से जघन्य-उत्कृष्ट निकाला। जघन्य-उत्कृष्ट उसमें से निकाला।

गलते, अर्थात् पृथक् होते पुद्गलद्रव्यों के अन्त में-अवसान में (अन्तिम दशा में) स्थित, वह कार्यपरमाणु है... लो.. अन्त में अवसान अर्थात् कार्यपरमाणु। पृथक् होने के योग्य हो गया न ! पृथक् वह कार्यपरमाणु। स्कन्ध में से पृथक् पड़ा, वह कार्यपरमाणु। स्कन्ध का कारण हो, वह कारणपरमाणु। स्कन्ध में से पृथक् पड़ा, वह कार्यपरमाणु। देखो ! यह पुद्गल की विविधता का वर्णन। ऐसा सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं हो सकता। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

(अर्थात्, स्कन्ध खण्डित होते-होते जो छोटे से छोटा अविभागभाग रहता है, वह कार्यपरमाणु है)। (इस प्रकार) अणुओं के (परमाणुओं के) चार भेद हैं — कार्य, कारण, जघन्य, और उत्कृष्ट। वह परमाणुद्रव्य, स्वरूप में स्थित होने से,... वह परमाणुद्रव्य स्वरूप में स्थित, **उसे विभाव का अभाव है,...** उसे विभाव का अभाव है। किसे ? परमाणु तो अपने स्वरूप में है। दो परमाणु में जुड़ान नहीं, इसलिए उस विभाव का उसमें अभाव है। **इसलिए (उसे) परमस्वभाव है।** परमाणु को परमस्वभाव कहा जाता है।

स्कन्ध का कारण, उसे कारणपरमाणु कहा था। स्कन्ध के जुड़ने का काम करे, उसे उत्कृष्ट परमाणु कहा। स्कन्ध के परमाणु का कारण, उसे कारणपरमाणु कहा और उस स्कन्ध के पृथक् पड़ने का, उसे कार्यपरमाणु कहा। अथवा उत्कृष्ट, जघन्य अब। स्कन्ध के योग्य नहीं, इसलिए वह जघन्य परमाणु और स्कन्ध होने के योग्य स्निग्धता आदि है, वह उत्कृष्ट परमाणु है। ऐसी बात श्वेताम्बर में है ही नहीं। पुद्गल की रीति का प्रकार श्वेताम्बर में नहीं है। यह बात ही पूरी सनातन अलग है। कहीं नहीं मिलती। फिर प्रवचनसार का दृष्टान्त (उद्धरण) देंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)